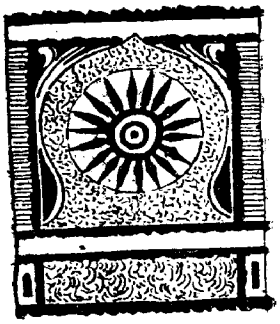

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल
शास्त्री, एम० ए०, पी-एच० डी०

राजस्थानी जैन संतों की साहित्य-साधना

भारतीय इतिहास में राजस्थान का महत्त्वपूर्ण स्थान है. एक ओर यहाँ की भूमि का कण-कण वीरता एवं शौर्य के लिये प्रसिद्ध रहा है तो दूसरी ओर भारतीय साहित्य एवं संस्कृति के गौरवस्थल भी यहाँ पर्याप्त संख्या में मिलते हैं. यदि राजस्थान के वीर योद्धाओं ने जन्मभूमि की रक्षार्थ हँसते-हँसते प्राणों को न्योछावर किया तो यहाँ होने वाले साधु-संतों, आचार्यों एवं विद्वानों ने साहित्य की महती सेवा की और अपनी रचनाओं एवं कृतियों द्वारा जनता में देशभक्ति, कर्तव्यनिष्ठा एवं नैतिकता का प्रचार किया. यहाँ के रणथम्भौर कुम्भलगढ़, चित्तौड़, भरतपुर, माँडोर जैसे दुर्ग यदि वीरता देशभक्ति एवं त्याग के प्रतीक हैं तो जैसलमेर, नागौर, बीकानेर. अजमेर, जयपुर, आमेर, डूंगरपुर, सागवाड़ा, टोडारायसिंह आदि कितने ही ग्राम एवं नगर राजस्थानी ग्रंथकारों, साहित्योपासकों एवं सन्तों के पवित्र स्थल हैं. इन्होंने. अनेक संकटों एवं झंझावातों के मध्य भी साहित्य की अमूल्य धरोहर को सुरक्षित रखा. वास्तव में राजस्थान की भूमि पावन एवं महान् है तथा उसका प्रत्येक कण वन्दनीय है.

राजस्थान की इस पावन भूमि पर अनेकों विद्वान् संत हुए जिन्होंने अपनी कृतियों द्वारा भारतीय साहित्य के भण्डार को इतना अधिक भरा कि वह कभी खाली नहीं हो सकता. यहाँ सन्तों की परम्परा चलती ही रही, कभी उसमें व्यवधान नहीं आया. सगुण एवं निर्गुण दोनों ही भक्ति की धाराओं के संत यहाँ होते रहे और उन्होंने अपने आध्यात्मिक प्रवचनों, गीति-काव्यों एवं मुक्तक छन्दों द्वारा जन-जागरण को उठाये रखा. इस दृष्टि से मीरा, दादूदयाल, सुन्दरदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं. इधर जैन सन्तों का तो राजस्थान सैकड़ों वर्षों तक केन्द्र रहा है. डूंगरपुर, सागवाड़ा, नागौर, आमेर, अजमेर, बीकानेर, जैसलमेर, चित्तौड़ आदि इन सन्तों के मुख्य स्थान थे, जहाँ से वे राजस्थान में ही नहीं किन्तु भारत के अन्य प्रदेशों में भी विहार करके अपने ज्ञान एवं आत्मसाधना से जन-साधारण का जीवन ऊँचा उठाने का प्रयास करते. ये सन्त विविध भाषाओं के ज्ञाता होते थे तथा भाषा-विशेष से कभी मोह नहीं रखते थे. जिस किसी भाषा में जनता द्वारा कृतियों की मांग की जाती उसी भाषा में वे अपनी लेखनी चलाते तथा उसे अपनी आत्मानुभूति से परिप्लावित कर देते. कभी वे रास एवं कथा-कहानी के रूप में तथा कभी फागु, बेलि, शतक एवं बारहखड़ी के रूप में पाठकों को अध्यात्म-रस पान कराया करते. संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी एवं गुजराती आदि सभी भाषाएँ इनकी अपनी भाषा रहीं. प्रान्तवाद के झगड़े में वे कभी नहीं पड़े, क्योंकि इन सन्तों की साहित्य-रचना का उद्देश्य सदैव ही आत्म उन्नति एवं जनकल्याण रहा. लेखक का अपना विश्वास है कि वेद, स्मृति, उपनिषद् पुराण, रामायण एवं महाभारत-काल के ऋषियों एवं सन्तों के पश्चात् भारतीय साहित्य की जितनी सेवा एवं उसकी सुरक्षा जैन सन्तों ने की है उतनी अधिक सेवा किसी सम्प्रदाय अथवा धर्म के साधुवर्ग द्वारा नहीं हो सकी है. राजस्थान के इन सन्तों ने स्वयं तो विविध भाषाओं में सैकड़ों हजारों कृतियों का सर्जन किया ही किन्तु अपने पूर्ववर्ती आचार्यों, साधुओं, कवियों एवं लेखकों की रचनाओं को भी बड़े प्रेम श्रद्धा एवं उत्साह से संग्रह किया. एक-एक ग्रंथ की अनेकानेक प्रतियाँ लिखवा कर विभिन्न ग्रंथ-भण्डारों में विराजमान की और जनता को उन्हें पढ़ने एवं स्वाध्याय के लिये प्रोत्साहित किया. राजस्थान के आज सैकड़ों हस्तलिखित ग्रंथभण्डार उनकी साहित्य-सेवा के ज्वलंत उदाहरण हैं. जैन सन्त साहित्य-संग्रह की दृष्टि से कभी जातिवाद एवं सम्प्रदाय के चक्कर में नहीं पड़े किन्तु जहाँ से भी अच्छा एवं

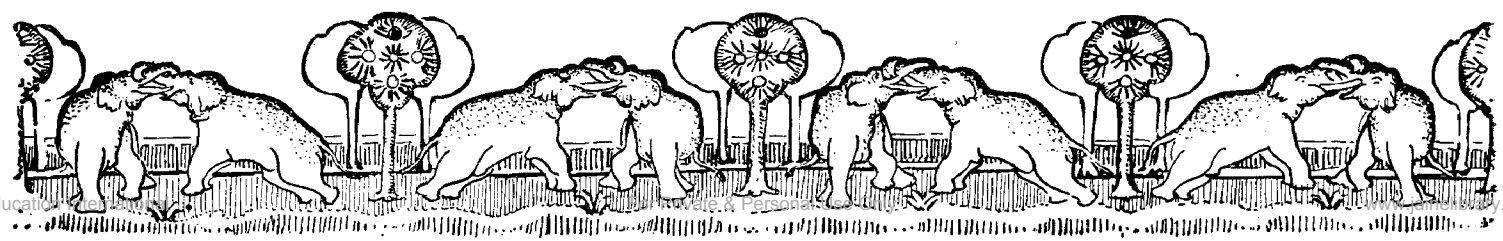

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्याणकारी साहित्य उपलब्ध हुआ वहीं से उसका संग्रह करके शास्त्र-भण्डारों में संग्रहीत किया गया. साहित्य-संग्रह की दृष्टि से इन्होंने स्थान-स्थान पर ग्रंथभण्डार स्थापित किये. इन्हीं सन्तों की साहित्यिक सेवा के परिणामस्वरूप राजस्थान के जैन ग्रंथभण्डारों में १।।-२ लाख हस्तलिखित ग्रंथ अब भी उपलब्ध होते हैं. ग्रंथसंग्रह के अतिरिक्त इन्होंने जैनेतर विद्वानों द्वारा लिखित काव्यों एवं अन्य ग्रंथों पर टीकाएँ लिखीं और उनके पठन-पाठन में सहायता पहुँचाई.

राजस्थान के जैनग्रंथ-भण्डारों में अकेले जैसलमेर के जैन ग्रंथ-संग्रहालय ही ऐसे संग्रहालय हैं जिनकी तुलना भारत के किसी भी प्राचीन एवं बड़े से बड़े ग्रंथ-संग्रहालय से की जा सकती है. उनमें अधिकांश ताड़पत्र पर लिखी हुई प्रतियां हैं और वे सभी राष्ट्र की अमूल्य संपत्ति हैं. ताड़पत्र पर लिखी हुई इतनी प्राचीन प्रतियां अन्यत्र मिलना सम्भव नहीं है. श्री जिनचन्द्र सूरि ने संवत् १४६७ में बृहद् ज्ञानभण्डार की स्थापना करके साहित्य की सैकड़ों अमूल्य निधियों को नष्ट होने से बचाया. जैसलमेर के इन भण्डारों को देखकर कर्नल टाड, डा० बूह्लर, डा० जैकोबी जैसे पाश्चात्य विद्वान् एवं भाण्डारकर, दलाल, जैसे भारतीय विद्वान् आश्चर्यचकित रह गये. द्रोणाचार्यकृत ओघनिर्युक्ति वृत्ति की इस भण्डार में सबसे प्राचीन प्रति है जिसकी संवत् १११७ में पाहिल ने प्रतिलिपि की थी.[1] जैनागमों एवं ग्रंथों की प्रतियों के अतिरिक्त दण्डि कवि के काव्यादर्श की संवत् ११६१ की, मम्मट के काव्य-प्रकाश की संवत् १२१५ की, रुद्रट कवि के काव्यालंकार पर नमि साधु की टीका सहित संवत् १२०६, एवं कुत्तक के वक्रोक्तिजीवित की १४वीं शताब्दी की महत्त्वपूर्ण प्रतियाँ संग्रहीत की हुई हैं. विमल सूरि कृत प्राकृत के महाकाव्य पउमचरिय की संवत् १२०४ की जो प्रति है वह संभवतः अब तक उपलब्ध प्रतियों में प्राचीनतम प्रति है. इसी तरह उद्योतन सूरिकृत कुवलयमाला की प्रति भी अत्यधिक प्राचीन है जो संवत् १२६१ की लिखी हुई है. कालिदास, माघ, भारवि, हर्ष, हलायुध, भट्टी आदि महाकवियों द्वारा रचित काव्यों की प्राचीनतम प्रतियाँ एवं उनकी टीकाएँ यहाँ के भण्डारों के अतिरिक्त आमेर, अजमेर, नागौर, बीकानेर के भण्डारों में भी संग्रहीत हैं. न्यायशास्त्र के ग्रन्थों में सांख्यतत्त्वकौमुदी, पातंजलयोगदर्शन, न्यायबिन्दु, न्यायकंदली, खंडन-खंडखाद्य, गोतमीय न्यायसूत्रवृत्ति आदि की कितनी ही प्राचीन एवं सुन्दर प्रतियां जैन संतों द्वारा प्रतिलिपि की हुई इन भण्डारों में संग्रहीत हैं. नाटक साहित्य में मुद्राराक्षस, वेणीसंहार, अनर्घराघव एवं प्रबोधचन्द्रोदय के नाम उल्लेखनीय हैं. जैनसंतों ने केवल संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य के संग्रह में ही रुचि नहीं ली किन्तु हिंदी एवं राजस्थानी रचनाओं के संग्रह में भी उतना ही प्रशंसनीय परिश्रम किया. कबीरदास एवं उनके पंथ के कवियों द्वारा लिखा हुआ अधिकांश साहित्य आज आमेर शास्त्रभण्डार में मिलेगा. इसी तरह पृथ्वीराज रासो, वीसलदेव रासो की महत्त्वपूर्ण प्रतियां बीकानेर एवं कोटा के शास्त्र-भण्डारों में संग्रहीत हैं. कृष्ण-रुक्मणिबेलि, रसिकप्रिया एवं विहारीसतसई की तो गद्यपद्य टीका सहित कितनी ही प्रतियाँ इन भण्डारों में खोज करने पर प्राप्त हुई हैं.

राजस्थान के ये जैन संत साहित्य के सच्चे साधक थे. आत्मचिंतन एवं आध्यात्मिक चर्चा के अतिरिक्त इन्हें जो भी समय मिलता, वे उसका पूरा सदुपयोग साहित्यरचना में करते थे. वे स्वयं ग्रंथ लिखते, दूसरों से लिखवाते एवं भक्तों को लिखवाने का उपदेश देते. अपनी रचनाओं के अन्त में इस तरह के कार्य की अत्यधिक प्रशंसा करते. इसके दो उदाहरण देखिये—

१. जो पढइ पढावइ एक चित्तु, सइ लिहइ लिहावइ जो णिरुत्तु।
आयरणइं मरणइं जो पसत्थु, परिभावइ अहिणिसु एउ सत्थु॥
जिप्पइ ण कसायहि इंदिएहिं, तो लियइ ण सो पासंडिएहि।
तहो दुक्किय कम्मु असेसु जाइ, सो लहइ मोक्ख सुक्खभावइ॥—श्रीचन्द्रकृत रत्नकरण्ड

२. मनोहार प्रबन्ध ए गुंथ्यो करि विवेक।
प्रद्युमन गुण सूत्रिकरी, सब वन कुसुम अनेक॥१०॥

---

१. संवत् ११६७ मंगल महाश्री ॥६॥ पाहिलेन लिखितम् मंगल महाश्री.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवीयण गुणि कंठि करो, एह अपूरव हार ।
धरि मंगल लच्छमी घणी, पुण्य तणो नहिं पार ॥११॥
भणि भणाति सांभलि, लिखि लिखावइ एह ।
देवेन्द्रकीर्ति गच्छपती कहि, स्वर्ग मुक्ति लहि तेह ।

—भ० देवेन्द्रकीर्ति कृत प्रद्युम्नप्रबन्ध

इसी तरह कवि सधारु ने तो ग्रंथ के पढ़ने पढ़ाने लिखने और लिखवाने का जो फल बतलाया है वह और भी आकर्षक है :

ऐहु चरितु जो वांचइ कोइ, सो नर स्वर्ग देवता होइ ।
हलुवइ धर्म्म खपइ सो देव, मुकति वरंगणि मागइ एम्व ॥६६७॥
जो फुणि सुणइ मनह धरि भाउ, असुभ कर्म ते दूरि हि जाइ ।
जोर वखाणइ माणुसु कवणु, तहि कहु तूसइ देव परदवणु ॥
अरु लिखि जो लिखियावइ साथु, सो सुर होइ महागुण राथु ।
जोर पढावइ गुण किउ विलउ, सो नर पावइ कंचण भलउ ॥६६८॥
यहु चरितु पुंन भंडारू, जो वरु पढइ सु नर मह सारु ।
तहि परदमणु तुही फल, देइ, संपति पुत्तु अवरु जसु होई ॥७००॥

ग्रंथों की प्रतिलिपि करने में बड़ा परिश्रम करना पड़ता था. शुद्ध प्रतिलिपि करना, सुन्दर एवं सुवाच्य अक्षर लिखना एवं दिन भर कमर झुकाये ग्रंथलेखन का कार्य प्रत्येक के लिये संभव नहीं था. उसे तो सन्त एवं संयमी विद्वान् ही सम्पन्न कर सकते थे. इसलिये वे ग्रन्थ के अन्त में कभी-कभी उसकी सुरक्षा के लिये निम्न शब्दों में पाठकों का ध्यान आकर्षित किया करते थे.

भग्नपृष्टि कटिर्ग्रीवा, वक्रदृष्टिरधो मुखम् ।
कष्टेन लिखितं शास्त्रं, यत्नेन परिपालयेत् ॥

इन संतों के सुरक्षा के विशेष नियमों के कारण राजस्थान में ग्रंथों का एक विशाल संग्रह मिलता है. कितने ही ग्रंथ-संग्रहालय तो अब भी ऐसे हैं जिनकी किसी भी विद्वान् द्वारा छानबीन नहीं की गई है. लेखक को राजस्थान के ग्रंथ-भण्डारों पर शोध-निबन्ध लिखने के अवसर पर राजस्थान के १०० भी से अधिक भण्डारों को देखने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है.

यदि मुस्लिमयुग में धर्मान्ध शासकों द्वारा इन शास्त्रभण्डारों का विनाश नहीं किया जाता एवं हमारी ही लापरवाही से सैकड़ों हजारों ग्रंथ चूहों, दीमक एवं शीलन से नष्ट नहीं होते तो पता नहीं आज कितनी अधिक संख्या में इन भण्डारों में ग्रंथ उपलब्ध होते ! फिर भी जो कुछ अवशिष्ट हैं उनका ही यदि विविध दृष्टियों से अध्ययन कर लिया जावे, उनकी सम्यक् रीति से ग्रंथसूचियां प्रकाशित कर दी जावें तथा प्रत्येक अध्ययनशील व्यक्ति के लिये वे सुलभ हो सकें तो हमारे आचार्यों, साधुओं एवं कवियों द्वारा की हुई साहित्य-साधना का वास्तविक उपयोग हो सकता है. जैसलमेर, नागौर, बीकानेर, चुरू, आमेर, जयपुर, अजमेर, भरतपुर, कामा आदि स्थानों के संग्रहीत ग्रंथभण्डारों की आधुनिक पद्धति से व्यवस्था होनी चाहिए. उन्हें रिसर्च-केंद्र बना दिया जाना चाहिये जिससे प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत, हिन्दी एवं राजस्थानीय भाषा पर रिसर्च करने वाले विद्यार्थियों द्वारा उनका सही रूप से उपयोग किया जा सके. क्योंकि उक्त सभी भाषाओं में लिखित अधिकांश साहित्य राजस्थान के इन भण्डारों में उपलब्ध होता है. यदि ताडपत्र पर लिखी हुई प्राचीनतम प्रतियाँ जैसलमेर के ग्रंथ भण्डारों में संग्रहीत हैं तो कागज पर लिखी हुई संवत् १३१६ की सबसे प्राचीन प्रति जयपुर के शास्त्रभण्डार में संग्रहीत हैं. अभी कुछ वर्ष पूर्व जयपुर के एक भण्डार में हिन्दी की एक अत्यधिक प्राचीन कृति जिनदत्त चौपई (रचना काल सं० १३५४) उपलब्ध हुई है जो हिन्दी भाषा की एक अनुपम कृति है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रसन्नता की बात है कि इधर १०-१५ वर्षों से भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में जैन साहित्य पर भी रिसर्च किया जाना प्रारम्भ हुआ है. विद्यार्थियों का उधर और भी अधिक झुकाव हो सकता है यदि हम इन भण्डारों को शोधकेन्द्र (Research Centres) के रूप में परिवर्तित कर दें और उनको अपने शोधप्रबन्ध लिखने में पूरी सुविधाएं प्रदान करें.

अब यहां राजस्थान के कुछ प्रमुख सन्तों की भाषानुसार साहित्यिक सेवाओं पर प्रकाश डाला जा रहा है :

प्राकृत-अपभ्रंश साहित्य

जम्बूद्वीपपण्णत्ति के रचयिता आचार्य पद्मनंदि राजस्थानी सन्त थे. इसमें २३८९ प्राकृत गाथाएँ हैं जिनमें जम्बूद्वीप का वर्णन किया गया है. प्रज्ञप्ति की रचना वारां [कोटा] नगर में हुई थी. उन दिनों मेवाड़ पर राजा शक्ति या सक्ति का शासन था और वारां मेवाड़ के अधीन था. ग्रंथकार ने अपने आपको वीरनंदि का प्रशिष्य एवं बलनंदि का शिष्य लिखा है. हरिभद्र सूरि राजस्थान के दूसरे सन्त थे जो प्राकृत एवं संस्कृत भाषा के जबर्दस्त विद्वान् थे. इनका सम्बन्ध चित्तौड़ से था. आगमग्रंथों पर उनका पूर्ण अधिकार था. इन्होंने अनुयोगद्वार सूत्र, आवश्यक सूत्र, दशवैकालिक सूत्र, नन्दीसूत्र, प्रज्ञापना सूत्र आदि आगम-ग्रंथों पर संस्कृत में विस्तृत टीकाएँ लिखीं और उनके स्वाध्याय में वृद्धि की. न्यायशास्त्र के ये प्रकाण्ड विद्वान् थे. इन्होंने अनेकान्त-जयपताका, अनेकान्तवादप्रवेश जैसे दार्शनिक ग्रंथों की रचना की. समराइच्चकहा प्राकृतभाषा की इनकी सुन्दर कथाकृति है जो गद्य-पद्य दोनों में ही लिखी हुई है. इसमें ९ प्रकरण हैं जिनमें परस्पर विरोधी दो पुरुषों के साथ-साथ चलने वाले ९ जन्मान्तरों का वर्णन किया गया है. इसका प्राकृतिक वर्णन एवं भावचित्रण दोनों ही सुन्दर हैं. धूर्ताख्यान भी इनकी अच्छी रचना है. हरिभद्र सूरि के योगबिन्दु एवं योग-दृष्टिसमुच्चय भी दर्शनशास्त्र की अच्छी रचनाएँ मानी जाती हैं.

महेश्वर सूरि भी राजस्थानी सन्त थे. इनकी प्राकृत भाषा की ज्ञानपञ्चमीकहा तथा अपभ्रंश की 'संयममंजरीकहा' प्रसिद्ध रचनाएं हैं. जैन दृष्टिकोण से लिखी गई, दोनों ही कृतियों में कितनी ही सुन्दर कथाएँ हैं. ज्ञानपंचमीकहा में जयसेन, नंद, भद्रा, वीर, कमल गुणानुराग, विमल, धरण, देवी और भविष्यदत्त की कथाएं हैं. कथाएं सुन्दर, रोचक एवं धाराप्रवाह में वर्णित हैं तथा एक बार प्रारम्भ करने के पश्चात् उसे छोड़ने को मन नहीं चाहता.

अपभ्रंश के प्रसिद्ध कवि हरिषेण भी चित्तौड़ के निवासी थे. इनके पिता का नाम गोवर्द्धन था. धक्कड़ उनकी जाति थी तथा श्री उजपुर से उनका निकास हुआ था. इन्होंने अपनी कृति 'धम्मपरिक्खा' संवत् १०४४ में अचलपुर में समाप्त की थी. धम्मपरिक्खा अपभ्रंश की सुन्दर कृति है जिसकी ११ संधियों में १०० कथाओं का वर्णन किया गया है. यह कथा-कृति जैन समाज में बहुत प्रिय रही. राजस्थान में इसका विशेष प्रचार था. इसलिए यहाँ के कितने ही ग्रंथभण्डारों में इस कृति की पाण्डुलिपियां मिलती हैं.

धम्मपरिक्खा के अतिरिक्त राजस्थान के ग्रंथ-संग्रहालयों में अपभ्रंश भाषा की १०० से भी अधिक रचनाएँ मिलती हैं. स्वयम्भू, पुष्पदन्त, वीर, नयनन्दि, सिंह, लक्ष्मण [लाखू] रइधू आदि कवियों की रचनाएं राजस्थान में विशेष रूप से प्रिय रही हैं. यहाँ के भट्टारकों एवं यतियों ने अपभ्रंश कृतियों की प्रतिलिपियाँ करवा कर भण्डारों में स्थापित करने में विशेष रुचि ली और यह परम्परा १५ वीं शताब्दी से १७ वीं शताब्दी तक अधिक रही. अपभ्रंश की इन कृतियों के लिये जयपुर, आमेर एवं नागौर के भण्डार विशेषतः उल्लेखनीय हैं. अपभ्रंश साहित्य का अधिकांश भाग इन्हीं भण्डारों में संग्रहीत है.[1]

संस्कृत साहित्य

राजस्थान के अधिकांश संत संस्कृत के भी विद्वान् थे. संस्कृत साहित्य से उन्हें विशेष रुचि थी और इस भाषा में उन्होंने श्रावकों के लिये पुराण, काव्य, चरित्र, कथा, स्तोत्र एवं पूजा साहित्य का भी सृजन किया था. १७ वीं शताब्दी

१. अपभ्रंश ग्रन्थों के परिचय के लिये देखिये लेखक द्वारा संपादित 'प्रशस्तिसंग्रह'.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक संस्कृत रचनाओं को पढ़ने की जनसाधारण में विशेष रुचि रही, इसीलिए प्राकृत एवं अपभ्रंश ग्रंथों पर भी संस्कृत में टीकाएँ एवं टिप्पण लिखे जाते रहे. किसी विषय पर यदि नवीन रचनाओं का लिखा जाना संभव नहीं हुआ तो प्राचीन साहित्य की प्रतिलिपियाँ करवा कर भण्डारों में रखी गयी. राजस्थान के सिद्धर्षि संभवतः प्रथम जैन संत थे जिन्होंने उपदेशमाला पर संस्कृतटीका लिखी और 'उपमितिभवप्रपंच कथा' को संवत् ९६२ में समाप्त किया. चन्द्रकेवलिचरित इनकी एक और रचना है जिसे इन्होंने संवत् ९७४ में पूर्ण किया था. १२ वीं शताब्दी में होने वाले आचार्य हेमचन्द्र से भी राजस्थानी जनता कम उपकृत नहीं है. इनके द्वारा लिखे हुये साहित्य का इस प्रदेश में विशेष प्रचार रहा. यही कारण है उनके द्वारा निबद्ध साहित्य दोनों ही सम्प्रदायों के शास्त्रभण्डारों में समान रूप से पाया जाता है. हेमचन्द्राचार्य संस्कृत के उद्भट विद्वान् थे और उन्होंने जो कुछ इस भाषा में लिखा वह प्रत्येक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है. १५ वीं शताब्दी में राजस्थान में भट्टारक सकलकीर्ति का उदय विशेष रूप से उल्लेखनीय है. सकलकीर्ति संस्कृत के प्रकांड विद्वान् थे. ये पहिले मुनि थे और बाद में इन्होंने अपने आपको भट्टारक घोषित किया था तथा संवत् १४९२ में गलियाकोट में एक भट्टारक गादी की स्थापना की. इन्होंने २८ से भी अधिक संस्कृत रचनायें लिखी जो राजस्थान के विभिन्न ग्रंथभण्डारों में उपलब्ध होती हैं. सकलकीर्ति के पश्चात् उनकी परम्परा में होने वाले भट्टारक भुवनकीर्ति, ब्रह्म जिनदास, भट्टारक ज्ञानभूषण, विजयकीर्ति शुभचन्द, सकलभूषण, सुमतिकीर्ति, वादिभूषण आदि अनेक शिष्य संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् थे. इन सन्तों ने संस्कृत भाषा के कितने ही ग्रंथ लिखे, श्रावकों से आग्रह करके ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ करवाई और शास्त्र-भण्डारों में विराजमान कीं. ब्रह्म जिनदास की १२ से अधिक रचनाएँ मिलती हैं जिनमें रामचरित [पद्मपुराण], हरिवंशपुराण एवं जम्बूस्वामीचरित के नाम उल्लेखनीय हैं.

भट्टारक ज्ञानभूषण की अकेली तत्त्वज्ञानतरंगिणी [सं० १५६०] उनकी संस्कृत की विद्वत्ता को बतलाने के लिये पर्याप्त है. शुभचन्द्र तो अपने समय के प्रसिद्ध भट्टारक थे. इनकी संस्कृत रचनाएँ प्रारम्भ से ही लोकप्रिय रही हैं. इनकी २४ संस्कृत रचनाएँ तो उपलब्ध हो चुकी हैं. ये षट्भाषाकविचक्रवर्ती कहलाते थे. तथा त्रिविध-विद्याधर [शब्दागम, युक्त्यागम तथा परमागम के ज्ञाता] थे. इनकी प्रसिद्ध कृतियों में चन्द्रप्रभचरित्र, करकुण्डचरित्र, कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा टीका, जीवन्धरचरित, पांडवपुराण, श्रेणिकचरित्र, चारित्रशुद्धिविधान आदि के नाम उल्लेखनीय हैं. आचार्य सोमकीर्ति १५ वीं शताब्दी के उद्भट विद्वान् थे. ये काष्ठासंघ में होनेवाले ८७ वें भट्टारक थे तथा भीमसेन के शिष्य थे. इन्होंने संस्कृत भाषा में सप्तव्यसनकथा, प्रद्युम्नचरित्र, एवं यशोधरचरित्र रचनाएँ कीं. तीनों ही लोकप्रिय रचनाएँ हैं और शास्त्रभण्डारों में मिलती हैं. हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् ब्र० रायमल्ल ने भक्तामरस्तोत्र की वृत्ति लिखकर अपनी संस्कृत-विद्वत्ता का परिचय दिया. ब्र० कामराज ने सकलकीर्ति के आदिपुराण को देखकर सं० १५६० में जयपुराण की रचना की. सेनगण के प्रसिद्ध भट्टारक सोमसेन ने वैराट नगर में शक संवत् १६५६ में पद्मपुराण की रचना की. आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ योगचिन्तामणि के संग्रहकर्त्ता थे नागपुरीय तपोगच्छ के संत हर्षकीर्ति सूरि. इस ग्रंथ का दूसरा नाम वैद्यकसारसंग्रह भी है. इस ग्रंथ की प्रतियाँ राजस्थान के बहुत से भण्डारों में उपलब्ध होती हैं.

१५ वीं शताब्दी में जिनदत्तसूरि ने जैसलमेर में बृहद् ज्ञानभण्डार की स्थापना की. ये संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे. इनके शिष्य कमलसंयमोपाध्याय ने संवत् १५४४ में उत्तराध्ययन पर संस्कृत टीका लिखी. इनके अतिरिक्त जैसलमेर में और भी कितने ही सन्त हुये जो संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे. इधर आमेर, जयपुर, श्रीमहावीरजी, अजमेर एवं नागौर भी भट्टारकों के केन्द्र रहे. ये अधिकांश भट्टारक संस्कृत के विद्वान् होते थे. इनके द्वारा लिखवाये बहुत से ग्रंथ राजस्थान के कितने ही भण्डारों में उपलब्ध होते हैं.

हिन्दी व राजस्थानी साहित्य

राजस्थान में हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा में काव्यरचना बहुत पहिले से प्रारम्भ हो गई थी. जनसाधारण की इस भाषा की ओर रुचि देखकर जैन सन्तों ने हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा को अपना लिया और इसमें छोटी रचनाएँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिखी जाने लगी. यद्यपि १७-१८ वीं शताब्दी तक अपभ्रंश में कृतियां लिखी जाती रहीं एवं संस्कृतग्रंथों के पठन-पाठन में जनता की उतनी ही रुचि बनी रही जितनी पहिले थी, किन्तु १३-१४ वीं शताब्दी से ही जनसाधारण की रुचि हिन्दी रचनाओं की ओर बढ़ती गयी और उसमें नये-नये ग्रंथ लिखे जाते रहे और उन्हें शास्त्र-भण्डारों में विराजमान किया जाता रहा. राजस्थान में हिन्दी का प्रथम सन्त कवि कौन था, यह तो अभी खोज का विषय है और इसमें विद्वानों के विभिन्न मत हो सकते हैं, लेकिन इतना अवश्य है कि यहाँ १३ वीं शताब्दी से अपभ्रंश रचनाओं के साथ-साथ हिन्दी रचनायें भी लिखी जाने लगीं. राजस्थान में जैन सन्तों ने हिन्दी को उस समय अपनाया था जब इस भाषा में लिखना विद्वत्ता से परे माना जाता था तथा इसे संस्कृत के विद्वान् देशी भाषा कह कर सम्बोधित किया करते थे. किन्तु जैन सन्तों ने उनकी कुछ भी परवाह नहीं की और जनसाधारण की इच्छा एवं अनुरोध को ध्यान में रख कर हिन्दी साहित्य का सर्जन करते रहे. पहिले यह कार्य छोटी-छोटी रचनाओं से प्रारम्भ किया गया फिर रास, चरित, बेलि, फागु, पुराण एवं काव्य लिखे जाने लगे. १४ वीं शताब्दी में लिखा हुआ जिनदत्त चौपई हिन्दी का सुन्दर काव्य है जो कुछ ही समय पहिले जयपुर के एक जैन भण्डार में उपलब्ध हुआ है. पद स्तवन एवं स्तोत्र भी खूब लिखे जाने लगे. फिर व्याकरण, छंद, अलंकार, वैद्यक, गणित, ज्योतिष, नीति, ऐतिहासिक औपदेशिक, संवाद आदि विषयों को भी नहीं छोड़ा गया और इनमें अच्छा साहित्य लिखा गया. हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा का यह सारा साहित्य राजस्थान के शास्त्रभण्डारों में संग्रहीत है. हिन्दी एवं राजस्थानी में लिखा हुआ इन सन्तों का साहित्य अभी अज्ञात अवस्था में पड़ा हुआ है और उस पर बहुत कम प्रकाश डाला जा सका है. राजस्थान में सैकड़ों जैन संत हुये हैं जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से साहित्य की महती सेवा की है. लेकिन हम प्रमादवश उनकी अमूल्य सेवाओं को भुला बैठे हैं. अब साहित्य को शास्त्र-भण्डारों में अथवा आल्मारियों में बंद करके रखने का समय नहीं है किन्तु उसे विना किसी डर अथवा हिचकिचाहट के विद्वानों एवं पाठकों के सामने रखने का है.

भरतेश्वर बाहुबलि रास संभवतः प्रथम राजस्थानी कृति है जो जैन सन्त शालिभद्र सूरि द्वारा १३ वीं शताब्दी में लिखी गयी. इसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र भरत एवं बाहुबली के जीवन का संक्षिप्त चित्रण है. भरत एवं बाहुबली के युद्ध का रोचक वर्णन है. इसके पश्चात् विजयसेन सूरि का रेवंतगिरिरास (सं० १२८८) सुमतिगणि का नेमिनाथ रास (सं० १२७०) विनयप्रभ का गौतमरास (सं० १४१२) आदि कितने ही रास लिखे गये.

१५ वीं शताब्दी से तो हिन्दी एवं राजस्थानी साहित्य में रचनाओं की एक बाढ़-सी आगयी. भट्टारक सकलकीर्ति ने संस्कृत में रचनाएं निबद्ध करने के साथ-साथ कुछ रचनाएं राजस्थानी भाषा में भी लिखी, जिससे उस समय की साहित्यिक रुचि का पता लगता है. सकलकीर्ति की राजस्थानी रचनाओं में आराधना-प्रतिबोधसार, मुक्तावलिगीत, णमोकारगीत, सारसिखामणिरास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं. सकलकीर्ति के एक शिष्य ब्रह्म जिनदास ने ६० से भी अधिक रचनाएँ लिखकर हिन्दी साहित्य में एक नया उदाहरण प्रस्तुत किया. इन रचनाओं में कितनी ही रचनायें तो तुलसीदास की रामायण से भी अधिक बड़ी हैं. इनकी राम-सीता के जीवन पर भी एक से अधिक रचनाएं हैं. ब्रह्म जिनदास की अबतक ३३ रासा ग्रंथ २ पुराण, ७ गीत एवं स्तवन, ६ पूजाएं एवं ७ स्फुट रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं. इन रचनाओं में रामसीतारास, श्रीपालरास, यशोधररास, भविष्यदत्त रास, परमहंसरास, हरिवंशपुराण, आदिनाथ पुराण आदि के नाम उल्लेखनीय हैं. भट्टारक सकलकीर्ति की शिष्य-परम्परा में होने वाले सभी भट्टारकों ने हिन्दी भाषा में रचनाएँ लिखने में पर्याप्त रुचि ली.

खरतर गच्छ के आचार्य जिनराजसूरि के शिष्य महोपाध्याय जयसागर १५-१६ वीं शताब्दी के विद्वान् थे. इन्होंने राजस्थानी भाषा में ३२ से भी अधिक रचनायें लिखीं जिनमें विनती, स्तवन एवं स्तोत्र आदि हैं. ऋषिवर्द्धन सूरि की नलदमयन्तीरास [सं० १५१२] प्रमुख रचना है. मतिसागर १६ वीं शताब्दी के विद्वान् थे. राजस्थानी भाषा में इनकी कितनी ही रचनाएं उपलब्ध हैं जिनमें धन्नारास [सं० १५१४] नेमिनाथ वसंत, मयणरेहारास, इलापुत्र चरित्र, नेमिनाथ-गीत आदि के नाम उल्लेखनीय हैं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्म बूचराज १६ वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि थे. मयण-जुज्झ इनकी प्रथम रचना थी जो इन्होंने संवत् १५८४ में समाप्त की थी. इनके अन्य ग्रंथों में सन्तोष-तिलक जयमाल, चेतन पुद्गलधमाल आदि उल्लेखनीय रचनाएं हैं. ये दोनों ही रूपक रचनाएं हैं जो नाटक साहित्य के अन्तर्गत आती हैं. सन्त विद्याभूषण रामसेन परम्परा के यति थे. इन्होंने सोजत नगर में भविष्यदत्त रास को संवत् १६०० में समाप्त किया था. धर्मसमुद्र गणि खतरगच्छीय विवेकसिंह के शिष्य थे जिन्होंने 'सुमित्र कुमाररास' को जालौर में संवत् १५६७ में तथा 'प्रभाकर गुणाकर चौपई' को संवत् १५७३ में मेवाड़ प्रदेश में समाप्त किया है. शकुंतला रास इनकी बहुत छोटी रचना है जो संभवतः इस तरह की प्रथम रचना है. पार्श्वचंद्र सूरि अपने समय के प्रभावशाली सन्त कवि थे. इन्होंने ५० से अधिक रचनाएं राजस्थानी भाषा को समर्पित करके साहित्यसेवा का सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया. इनका जन्म संवत् १५३८ में तथा स्वर्गवास संवत् १६१२ में हुआ था. राजस्थान के अन्य सन्त कवियों में विनयसमुद्र, कुशललाभ, हरिकलश, कनकसोम, हेमरत्नसूरि आदि के नाम उल्लेखनीय हैं. कुशललाभ खरतरगच्छ के सन्त थे. इनके द्वारा लिखी हुई 'माधवानल चौपई' [सं० १६१६] एवं 'ढोला-मारवणरी चौपई' राजस्थानी भाषा की अत्यधिक प्रसिद्ध रचनाएं हैं जो लोककथानकों पर आधारित हैं. इसी तरह हरिकलश भी इसी खरतरगच्छ के साधु थे जो अपने समय के प्रसिद्ध विद्वानों में से थे. इनका अधिकतर बिहार जोधपुर एवं बीकानेर प्रदेश में हुआ और अपने जीवन में २७-२८ रचनाएं लिखीं. सभी रचनाएं राजस्थानी भाषा की हैं.

१७ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ब्रह्मरायमल्ल एक अच्छे संत हुये जिनकी हनुमत चौपई, भविष्यदत्तकथा, प्रद्युम्नरास, सुदर्शनरास आदि अत्यधिक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय रचनाएं हैं. इन्होंने स्थान-स्थान पर घूम कर काव्यरचना की और जनसाधारण का इस ओर ध्यान आकृष्ट किया. इन्होंने गढ़हरसौर, गढ़ रणथम्भौर एवं सांगानेर आदि स्थानों का अपनी रचनाओं में अच्छा वर्णन किया है. आनन्दघन आध्यात्मिक सन्त थे. इनकी आनन्दघन बहोत्तरी एवं आनन्दघन चौबीसी उच्चस्तर की रचनाएँ हैं. विद्वानों के मतानुसार इनका जन्म संवत् १६६० एवं मृत्यु संवत् १७३० में हुई थी. ब्रह्म कपूरचंद ने संवत् १६९७ में पार्श्वनाथरासो को समाप्त किया था. इनके कितने ही पद भी मिलते हैं. इनका जन्म आनन्दपुर में हुआ था. हर्षकीर्ति भी १७ वीं शताब्दी के प्रसिद्ध राजस्थानी कवि थे. 'चतुर्गति वेलि' इनकी प्रसिद्ध रचना है जिसे इन्होंने संवत् १६८३ में समाप्त किया था. इनकी अन्य रचनाओं में षट्लेश्याकवित्त, पंचमगति बेलि, कर्महिंडोलना, सीमंधर की जकड़ी, नेमिनाथ राजमती गीत, मोरडा आदि उल्लेखनीय हैं. इनके कितने ही पद भी मिलते हैं जो भक्ति एवं वैराग्य रस से ओतप्रोत हैं.

समयसुन्दर राजस्थानी भाषा के अच्छे विद्वान् थे. श्री हजारीप्रसाद जी द्विवेदी के शब्दों में कवि का ज्ञानपरिसर बहुत ही विस्तृत है. वह किसी भी वर्ण्य विषय को विना आयास के सहज ही सम्भाल लेता है. इन्होंने संस्कृत में २५ तथा हिन्दी राजस्थानी भाषा में २३ ग्रंथ लिखे. इन्होंने सात छत्तीसियों की भी रचना की. कवि बहुमुखी प्रतिभा एवं असाधारण योग्यता वाले विद्वान् थे. इन्होंने सिन्ध, पंजाब, उत्तरप्रदेश. राजस्थान, सौराष्ट्र, गुजरात आदि प्रान्तों में विहार किया और उनमें विहार करते हुये विभिन्न ग्रंथों की रचना भी की. राजस्थान में इन्होंने सबसे अधिक भ्रमण किया और अपने समय में एक साहित्यिक वातावरण-सा बनाने में सफल हुये. ये संगीत के भी अच्छे जानकार थे और अपनी रचनाओं को कभी-कभी गाकर भी सुनाया करते थे.

राजस्थान का बागड प्रदेश गुजरात प्रान्त से लगा हुआ है. इसलिए गुजरात में होनेवाले बहुत से भट्टारक एवं सन्त राजस्थान प्रदेश को भी पवित्र करते अपने चरण-कमलों से. यहाँ साहित्य रचना करते एवं अपने भक्तों को उनका रसास्वादन कराते. इन सन्तों में भ० रत्नकीर्ति, भ० कुमुदचन्द्र, भ० अभयचंद्र, भ० अभयनंदी, भ० शुभचन्द्र, ब्रह्म जयसागर, मुनि कल्याणकीर्ति, श्रीपाल, गणेश आदि संस्कृत हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा के अच्छे विद्वान् थे. इनकी कितनी ही रचनाएँ रिखबदेव, डूंगरपुर, सागवाडा एवं उदयपुर के शास्त्रभण्डारों में उपलब्ध हुई हैं. रत्नकीर्ति के नेमिनाथ फाग, नेमिनाथ बारहमासा एवं कितने ही पद उल्लेखनीय हैं. उनके पदों में मिठास एवं भक्ति का रसास्वादन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने को मिलता है. नेमिराजुल के विवाह से सम्बन्धित प्रसंग ही इनकी रचनाओं का एवं पदों का मुख्य विषय है. एक पद देखिये :

राग-देशाख

सखि को मिलावो नेमि नरिंदा ॥
ता बिन तन मन यौवन रजत है, चारु चंदन अरु चन्दा ॥ सखि० ॥
कानन भुवन मेरे जीया लागत, दुसह मदन को फंदा ।
तात मात अरु सजनी रजनी वे अति दुख को कन्दा ॥ सखि० ॥
तुम तो संकर सुख के दाता, करम काट किये मंदा ।
रतनकीरति प्रभु परम दयालु सेवत अमर नरिंदा ॥ सखि० ॥

कुमुदचन्द्र की साहित्य-साधना अपने गुरु रत्नकीर्ति से भी आगे बढ़ चुकी थी. ये बारडोली के जैन सन्त के नाम से प्रसिद्ध थे. इनकी अब तक कितनी ही रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं. इनकी बड़ी रचनाओं में आदिनाथ विवाहलो, नेमीश्वर हमची एवं भरतबाहुबलि छन्द हैं. शेष रचनायें पद, गीत एवं विनतिओं के रूप में हैं. इनके पद सजीव हैं. उनमें कवि की अन्तरात्मा के दर्शन होने लगते हैं. शब्दों का चयन एवं अर्थ की सरलता उनमें स्पष्ट नजर आती है. एक पद देखिये :

मैं तो नरभव वादि गमायो,
न कियो जप तप व्रत विधि सुन्दर, काम भलो न कमायो ॥ मैं तो० ॥१॥
विकट लोभ तें कपट कूट करी, निपट विषै लपटायो ॥
विटल कुटिल शठ संगति बैठो, साधु निकट विघटायो ॥ मैं तो० ॥२॥
कृपण भयो कछु दान न दीनो, दिन दिन दाम मिलायो ॥
जब जोवन जंजाल पड्यो तब परत्रिया तनु चित लायो ॥ मैं तो० ॥३॥
अंत समय कोउ संग न आवत झूठहिं पाप लगायो ॥
कुमुदचन्द्र कहे चूक परी मोही प्रभु पद जस नहीं गायो ॥ मैं तो० ॥४॥

इन भट्टारकों के शिष्य-प्रशिष्य भी साहित्य के परमसाधक थे और उनकी कितनी ही रचनायें उपलब्ध होती हैं. वास्तव में वह युग संतसाहित्य का युग था.

इधर आमेर, अजमेर एवं नागौर में भी भट्टारकों की गादियाँ थीं और वहाँ के भट्टारक अपने-अपने क्षेत्रों में साहित्य एवं संस्कृति की जागृति के लिये विहार किया करते थे. दिल्ली के भट्टारकपट्ट से आमेर का सीधा सम्बन्ध था और वहीं से नागौर एवं ग्वालियर में भट्टारकों के स्वतन्त्र पट्ट स्थापित हुये थे. भ० सुरेन्द्रकीर्ति [सं० १७२२] भ० जगत्कीर्ति [सं० १७३३] एवं भ० देवेन्द्रकीर्ति [सं० १७७०] का पट्टाभिषेक आमेर में ही हुआ था. ये सब जैन सन्त थे और साहित्य के सच्चे उपासक थे. आमेर शास्त्रभण्डार, नागौर एवं अजमेर के भट्टारकीय शास्त्रभण्डार इन्हीं भट्टारकों की साहित्य-सेवा का सच्चा स्वरूप हैं.

संवत् १८०० से आगे इन सन्तों में विद्वत्ता की कमी आने लगी. वे नवीन रचना करने के स्थान पर प्राचीन रचनाओं की प्रतियों को पुनः लिखवा कर भण्डारों में संग्रहीत करने में ही अधिक व्यस्त रहे. यह भी उनकी साहित्योपासना की एक सही दिशा थी जिसके कारण बहुत से ग्रंथों की प्रतियाँ हमें आज इन भण्डारों में सुरक्षित रूप में मिलती हैं.

इस प्रकार राजस्थान के इन जैन सन्तों ने भारतीय साहित्य की जो अपूर्व एवं महती सेवा की वह इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में लिखने योग्य है. उनकी इस सेवा की जितनी अधिक प्रशंसा की जाएगी कम ही रहेगी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org